बालपन और पर्यावरण का महत्व

सुनीता रेड्डी
फाउंडर-चेयरपर्सन
अन्थ्रोपोस इंडिया फाउंडेशन

ढ़ाई दशक से शिक्षा के क्षेत्र में होने के बाद और दो बच्चों की माँ होने के नाते, मैंने पाया है कि शहरी स्कूलों के बच्चों और अध्यापकों में ज़्यादा साझेदारी से काम नहीं हो पाता है। होगा भी कैसे? अब दिल्ली के ही प्राइवेट या गवर्नमेंट स्कूलों को देखा जाये तो बच्चे कक्षाओं में कैसे ठुसे हुए हैं। हर कक्षा में ३५-४० बच्चे होते हैं और उन सब के लिए क्लास टीचर सिर्फ एक। मुझे अच्छी तरह याद है कि पहले कैसे मैं अपने बच्चों के प्राइवेट स्कूल जाया करती थी, तो अपने बच्चों की तस्वीर हमेशा साथ रखती थी ताकि अध्यापक उनको पहचान के बता सकें कि दोनों पढ़ाई में कैसे हैं। वैसे बच्चे सीखते तो बहुत जगहों से हैं - घर से, स्कूल से, दोस्तों से और अपने आस पास के माहौल से भी।

अब कल्पना कीजिये, मैं जब ६ घण्टे गाड़ी चलाके पहाड़ों में ब्रमण हेतु पहुंची, तो मैंने उन वादियों में क्या देखा? एक छोटा सा प्यारा सा प्राइमरी स्कूल जो कि चारों ओर से घने पेड़, पौधों और पहाड़ियों से घिरा था। और जो स्कूल के अंदर पाया वह तो और भी अद्भुत था। वहां केवल तीन छात्र पढ़ते थे और उनका एक ही अध्यापक था जो उन्हें पांचवीं तक के सारे विषय पढ़ाता था।

थोड़ा और आगे जाके देखा तो वह तीन बच्चे - एक लड़की और दो लड़के - आपस में क्रिकेट खेल रहे थे। अध्यापक से अनुमति लेने के बाद जब मैंने उन बच्चों से बात की तो पाया कि बड़े होकर एक को टीचर बनना है, एक को फौजी और एक को ड्राइवर बनना है।

उन्होंने बताया कि घर से स्कूल के रास्ते में उनको हाथी मिलते हैं, और बकरियां, ऊँठ और तरह तरह की छिपकलियां भी। अब कहाँ यह बच्चे और कहाँ हम, बिल्कुल विपरीत। जहाँ एक ओर इन बच्चों के लिए पशु पक्षियों के साथ मिलकर रहना कोई बड़ी बात नहीं थी वहीँ हम दो ५० साल की व्यसक, भ्रमण पे निकली सहेलियों के लिए थोड़े थोड़े फासले पर खतरा महसूस हो रहा था।चिंता सता रही थी कि कहीं अचानक से कोई हाथी मिल गया तो क्या करेंगे, या कोई चीता मिल गया तो क्या करेंगे, और कहाँ ये बेबाक नन्हे नन्हे बच्चे, हस्ते गाते जानवरों के बगल से निकल के रोज़ रोज़ स्कूल पहुँच रहे थे।नन्ने तो यह दिखने में थे ही पर यह डरना नहीं जानते थे, हम शहरी लोगों की तरह। सौ बात की एक बात यह है कि जो बच्चे ऐसे माहौल मैं पले बड़े होते हैं, उनकी समझ बूझ शहरी बच्चों से भिन्न होती है। यहाँ के वातावरण और शहर की भीड़ भाड़ और शोरो गुल में बड़े हुए बच्चों की सोच अलग होती है।

बस इसी बिंदु पे हमारी शिक्षा व्यवस्था से गलती हो जाती है।अलग-अलग परिपेक्ष और जगहों से आने वाले बच्चों की प्रतिस्पर्धा करवा देते हैं, खासकर शहरों में। ऐसे में ज़्यादातर बच्चों का ध्यान और सोच थोड़ी संकुचित और एक-तरफ़ा ही रह जाती है। बच्चे, न चाहते हुए भी, भेद भाव करना सीख ही जाते हैं। बजाय इसके, शिक्षा व्यवस्था तो ऐसी होनी चाहिए कि बच्चों को एक संतुष्ट और पूर्ण जीवन जीना सीखा दे,जहाँ सबको समान दृष्टी से देखने की सीख दी जाती हो। आखिर तभी तो एक ऐसे सकारात्मक समाज की रचना हो पाएगी जहाँ 'जिओ और जीने दो' सही मायनों में सिद्ध हो पाएगा।